❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।।

भागवत-पत्रिका

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ।।

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंननकर ।।

वर्ष ७ | गौराब्द ४७५, मास—त्रिविक्रम १६, वार—कारणोदशायी
बृहस्पतिवार, ३२ ज्येष्ठ, सम्वत् २०१८, १६ जून १९६१ | संख्या १

श्रीमुकुन्दमुक्तावली

[श्रीमद्-रूप-गोस्वामि-विरचितम्]

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहास्यम् ।
कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावचूलं कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम् ॥१॥

मुखजितशरदिन्दुः केलिलावण्यसिन्धुः करविनिहितकन्दुः वल्लवीप्राणबन्धुः ।
वपुरुपसृतरेणुः कृष्णनिक्षिप्तवेणुः वचनवशगधेनुः पातु मां नन्दसूनुः ॥२॥

ध्वस्तदुष्टशंखचूड वल्लवीकुलोपगूढ भक्तमानसाधिरूढ निलकंठपिच्छचूड ।
कण्ठलम्बिमञ्जुगुञ्ज केलिलब्धरम्यकुंज कर्णवर्तिफुल्लकुन्द पाहि देव मां मुकुन्द ॥३॥

यज्ञभंगरुष्टशक्र नुन्नघोरमेघचक्र वृष्टिपूर खिन्नगोपवीक्षणोपजातकोप ।
क्षिप्रसव्यहस्तपद्म धारितोच्चशैलसद्मगुप्तगोष्ठ रक्ष रक्ष मां तथाद्य पंकजाक्ष ॥४॥

मुक्ताहारं दधदुडुचक्राकारं सारं गोपीमनसि मनोज्ञाक्षेपी ।
गोपी कंसे खलनिकुरम्बोत्तंसे वंशे रङ्गी दिशतु रतिं नः शार्ङ्गी ॥५॥

लीलोद्दामा जलधरमाला श्यामा रामाः कामादभिरचयन्ती रामाः ।
सा मामव्यादखिलमुनीनां स्तव्या गव्यापूर्तिः प्रभुरवशत्रोर्मूर्तिः ॥६॥

पर्ववतुंजशर्वरीपतिगर्वरीतिहराननं नन्दनन्दनमिन्दिराकृतवन्दनं धृतचन्दनम् ।
सुन्दरीरतिमन्दिरीकृतकन्दरं धृतमन्दरं कुण्डलद्युतिमण्डलप्लुतकन्धरं भज सुन्दरम् ॥७॥

गोकुलाङ्गणमण्डनं कृतपूतनाभवमोचनं कुन्दसुन्दरदन्तमम्बुजबृन्दवन्दितलोचनम् ।
सौरभाकरफुल्लपुष्करविस्फुरत्करपल्लवं दैवतव्रजदुर्लभं भज वल्लवीकुलवल्लभम् ॥८॥

तुण्डकान्तिदधिदोरुपाण्डुरांशुमण्डलं गण्डपालितण्डवालिशालिरत्नकुण्डलम् ।
फुल्लपुण्डरीकषण्डवल्लुसमाल्यमण्डनं चण्डबाहुदण्डमत्र नौमि कंसखण्डनम् ॥९॥

उत्तरङ्गदङ्गरागसंगमातिपिङ्गलस्तुङ्गशृंगसङ्गिपाणिरंगनालिमङ्गलः ।
दिग्विलासिमल्लिहासिकीर्त्तिवल्लिपल्लवस्त्वां स पातु फुल्लचारुचिल्लिरत्नवल्लवः ॥१०॥

अनुवाद— (क्रमशः)

जिनका वर्ण नवीन जलधरके समान है, जिनके कानोंमें चम्पाके फूल सुशोभित हैं, खिले हुए पद्मके समान जिनका मुख है, जिस पर सदा मन्दहास्य खेलता रहता है, जिनके वस्त्रकी कान्ति स्वर्णके समान है, जो मस्तक पर मोरमुकुट धारण किये रहते हैं, उन सबके सार रूप श्रीयशोदाकुमारका मैं स्तवन करता हूँ ॥१॥

जिनके मुखकी अनुपम शोभा शरदृतुके पूर्ण चन्द्रका पराभव करती है, जो क्रीड़ारस और लावण्य के समुद्र हैं, जो हाथमें कन्दुक लिये रहते हैं तथा गोपियोंके प्राणबन्धु हैं, जिनका मङ्गलविग्रह गोधूलिसे धूसरित रहता है, जो बगलमें बंशी लिये रहते हैं और गौएँ जिनकी वाणीके वशीभूत रहती हैं, वे नन्दनन्दन मेरी रक्षा करें ॥२॥

हे मुकुन्द ! आपने शंखचूड़-जैसे दुष्टका बातकी-बातमें संहार कर दिया । भाग्यवती गोपरमणियाँ बड़े ही प्रेमसे आपको हृदयसे लगाती हैं । भक्तोंकी मानस-भूमि पर आप सदा ही आरूढ़ रहते हैं । मयूरपिच्छ के द्वारा आप अपने केशपाशको सजाये रहते हैं । आपके कंठ देशमें मनोहर गुंजाओंके हार लटके रहते हैं । अपनी रसमयी क्रीड़ाओंके लिये आप रमणीय कुंजोंका आश्रय लेते हैं और अपने कानोंमें खिले हुए कुन्दके फूल खोंसे रहते हैं । देव ! आप मेरी रक्षा करें ॥३॥

हे कमलनयन ! यज्ञ बन्द कर दिये जानेसे रुष्ट हुए इन्द्रने भयंकर मेघमण्डलीको प्रेरित कर जब व्रजभूमिपर मूसलाधार वर्षा प्रारंभ की, उस समय इस अतर्कित विपत्तिसे दुःखी हुए गोपालोंको देख कर आपके क्रोधकी सीमा नहीं रही और आपने तुरंत अपने बाँये करकमल पर उत्तुङ्ग गोवर्द्धन गिरिको धारण कर उसीकी छत्रच्छायासे सम्पूर्ण व्रजमण्डल को उबार लिया, उसी प्रकार आज मुझ अनाथकी भी रक्षा करें ॥४॥

जो अपने वक्षःस्थलपर नक्षत्रमण्डलीके समान मोतियोंका बहुमूल्य एवं श्रेष्ठ हार धारण किया करते है, जो गोपाङ्गनाओंके चित्तमें प्रेमका संचार करते रहते हैं, दुष्टमण्डलीका शिरोभूषणरूप कंस जिनके क्रोधका शिकार बन गया और उनकी वंशीपर विशेष प्रीति है, वे कृष्ण हमें अपने दुर्लभ प्रेमका दान करें ॥५॥

स्वच्छन्द क्रीड़ामें रत रहनेवाली मेघमालाके समान श्याम, गोपबालाओंको प्रेम-व्याधिसे जर्जर

कर देनेवाली, अखिल मुनिमण्डलीके द्वारा स्तवनके योग्य एवं दूध, मक्खन आदि गव्य पदार्थोंसे पूर्ण तृप्तिका अनुभव करनेवाली भगवान अघसूदन श्रीनन्दनन्दनकी सर्वैश्वर्य पूर्ण मंजुलमूर्ति मेरी रक्षा० करे ॥६॥

जिनका मनोहर मुखमण्डल पूर्णिमाके चन्द्रमाके गर्वको चूर्ण कर देता है, भगवती लक्ष्मी जिनके चरणोंका सदा ही वन्दन किया करती हैं, जो अपने श्रीविग्रहपर दिव्यातिदिव्य चन्दनका लेप किये रहते हैं, जो व्रजसुन्दरियोंका प्रेमोपहार स्वीकार करनेके लिये गिरिराजकी कन्दराओंको मंदिर बना लेते हैं, घनघोर वर्षासे व्रजको बचानेके लिये जिन्होंने गोवर्द्धनगिरिको लीलासे ही अपने करकमलपर धारण कर लिया है एवं जिनकी ग्रीवा चमचमाते हुए कुण्डलोंके प्रभा-मण्डलसे परिव्याप्त रहती है, उन श्यामसुन्दर नन्द-नन्दनका ही निरन्तर सेवन करते रहो ॥७॥

जो गोकुलके प्राङ्गणको अपनी मनोमुग्धकारी लीलाओंसे मण्डित करनेवाले पूतना-जैसी राक्षसीको जन्म-मृत्युके चक्रसे सदाके लिये छुड़ा देनेवाले हैं, जिनकी दन्तावली कुन्दपङ्क्तिके समान शुभ्र एवं मनोहर है, जिनके विशाल लोचन अम्बुजवृन्दके द्वारा बन्दित हैं, जिनके करपल्लव सौरभके निधान फुल्ल-पंकजोंके समान शोभायमान हैं और जिनका दिव्य-दर्शन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, उन गोपीजन-वल्लभ भगवान श्रीकृष्णका सदा स्मरण करते रहो ॥८॥

जिनके मनोहर मुखमण्डलकी कान्ति पूर्णिमाके चन्द्र-मण्डलके गर्वको भी खण्डित करती रहती है, रत्ननिर्मित कुण्डल जिनके गण्ड-मण्डल पर ताण्डव करते रहते हैं, फूले हुए कमलोंकी मालासे जिनका वक्षस्थल सदा मण्डित रहता है, और जिनके बाहु-दण्ड शत्रुओंके लिये बड़े ही प्रचण्ड हैं, उन कंससूदन भगवान श्रीकृष्णकी मैं स्तुति करता हूँ ॥९॥

उठती हुई तरङ्गोंके समान अंगरागके लेपसे जिनकी अङ्गकान्ति पीताभ हो गयी है, जो हस्त-कमलमें लम्बा-सा सींग धारण किये हुए हैं, जो व्रजङ्गनाओंकी मण्डलीके लिये अत्यन्त मङ्गलरूप हैं, जिनकी कीर्तिवल्लीके पल्लव दिशाओंको मण्डित करनेवाले मल्लिकाके पुष्पोंका परिहास करते हैं और जिनकी कमनीय भ्रूलताएँ कान्तिसे उल्लसित रहती हैं, वे वल्लवकुमार आज आपकी रक्षा करें ॥१०॥

(क्रमशः)

देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ।
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥
तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् हरीश्वरः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ॥
(श्रीमद्भा० २।१।४-५)

—संसारमें जिन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धी कहा जाता है, वे शरीर, पुत्र, स्त्री आदि कुछ नहीं है, असत् हैं, परन्तु जीव उनके मोहमें ऐसा पागल-सा हो जाता है कि रात-दिन उनको मृत्युका ग्रास होते देखकर भी चेतता नहीं। इसीलिये परीक्षित् ! जो अभय पदको प्राप्त करना चाहता है, उसे तो सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी ही लीलाओंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिए।

कीर्तनका अधिकारी कौन है ?

कीर्तनका प्रभाव

नवधा भक्तिके अन्तर्गत कीर्तनाख्या भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। दूसरे आठ प्रकारके भक्ति-अङ्ग कीर्तनाख्या भक्तिके साथ ही साधित होते हैं। कृष्ण-कीर्तन पापोंसे मलिन हुए जीवोंके हृदयरूपी दर्पणको साफ कर देते हैं, भवरूपी महादावाग्निको बुझा देते हैं, जीवोंके परम मङ्गलरूप कल्याण-किरणोंका विस्तार करते हैं; वे अप्राकृत अनुभूतिके प्राण हैं, जीवोंके कृष्णसेवानन्दको बढ़ाते हैं, पद-पद पर पूर्ण अमृत अर्थात् प्रेमका आस्वादन कराते हैं तथा सेवामृत-समुद्रमें सबको निमज्जित करते हैं।

कृष्ण कीर्तनकी योग्यता

कृष्णका कीर्तन कृत्रिम रूपसे नहीं होता। कीर्तनकारी अपनी शुद्ध अप्राकृत बुद्धिद्वारा चिन्मय कृष्ण नामका केवल सेवोन्मुख होकर ही कीर्त्तन कर सकता है। जहाँ गायककी वृत्ति अन्याभिलाषमयी (कृष्ण-सेवाके अतिरिक्त दूसरी अभिलाषाओं वाली) या कर्म-ज्ञान द्वारा आच्छादित होती है, वहाँ कीर्तन या संगीत भक्तिका अङ्ग नहीं रह जाता। इसलिये श्रीमन्महाप्रभुने जीवोंके लिये उपदेश किया है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥
(शिक्षाष्टक-३)

सब प्रकारके प्राकृत अहङ्कारसे रहित होकर अति तुच्छ तृणसे भी अपनेको तुच्छ (सुनीच) जानकर, वृक्षकी भाँति सहिष्णु होकर, अपनेको सब प्रकारके जड़ीय अहङ्कारोंसे मुक्त कर तथा दूसरोंको यथायोग्य सम्मान प्रदान करते हुए अर्थात् प्राकृत अभिमानका सम्मान करते हुए जीवको निरन्तर कृष्णनाम कीर्तन करना चाहिये। प्राकृत अभिमानके वश होनेसे, अपनेको प्राकृत समझनेसे, अपनेको किसी प्राकृत वस्तुके अधीन समझनेसे, प्राकृत सम्मानकी लालसा रहने पर अथवा दूसरी प्राकृत वस्तुओंका असम्मान करने पर अप्राकृत हरिनामका निरन्तर कीर्तन नहीं किया जा सकता।

कीर्तनकी अयोग्यता

जो प्राकृत उच्च कुलमें पैदा होनेके कारण अपनेको बड़ा समझते हैं, जो अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर अपनेको धनी-मानी समझते हैं, जो अपने प्राकृत रूपके मदमें इठलाते फिरते हैं, जो पग-पग पर अपनी प्राकृत प्रशंसाके पीछे पड़े रहते हैं, वे कभी भी अकिंचनकी भाँति निष्कपट होकर श्रीकृष्णनाम कीर्तन नहीं कर सकते।

प्राकृत सुर-तालमें मुग्ध व्यक्ति नामकीर्तन के लिये अयोग्य है

जो सुर, लय, तान और मान आदिके सौन्दर्य द्वारा आच्छादित होकर नामका रसास्वादन करनेसे वंचित हैं वे हरिकीर्तनके अनाधिकारी हैं। ऐसे लोग हरि कीर्तन नहीं कर सकते। जो परम श्रद्धापूर्वक कृष्णका कीर्तन करनेमें उत्साह युक्त नहीं हैं, वे भी कीर्तनके अनाधिकारी हैं। जो आवान्तर उद्देश्यसे प्रतिष्ठा आदिके लिये नाम-कीर्तनमें दंभ प्रकाश करते हैं, वे नाम-कीर्तनके अयोग्य हैं। केवल जड़के प्रति उदासीन अप्राकृत सेवा-परायण एवं निष्कपट हृदयवाले सज्जन ही नाम कीर्तनके यथार्थ अधिकारी हैं।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती

हरिनाम

भव-समुद्र बड़ा ही दुस्तर है। परमेश्वरकी कृपा बिना इसको पार करना कठिन ही नहीं, असंभव है। जीव जड़से श्रेष्ठ होनेपर भी स्वभावतः दुर्बल और पराधीन है। भगवान् ही जीवोंके एकमात्र रक्षक, पालक और त्राता हैं। जीव अणु-चैतन्य हैं, अतएव परम चैतन्य भगवान्‌के अधीन और सेवक हैं। परम चैतन्य परमेश्वर ही जीवोंके आश्रय हैं। यह जड़ जगत माया द्वारा रचित है। इस जड़ जगतमें जीवोंकी स्थिति ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार अपराधी व्यक्ति कारागारमें होता है। भगवानसे विमुख होनेके कारण जीव मायाके संसारमें चक्कर काट रहे हैं। भगवद्-विमुख जीवोंको बद्धजीव कहते हैं; क्योंकि वे मायाद्वारा बँधे हुए होते हैं। इसके विपरीत जो जीव भगवान्‌के अनुगत होते हैं, वे मायासे मुक्त होते हैं; ऐसे जीवोंको मुक्त जीव कहते हैं। इस प्रकार अवस्था भेदसे अनन्त जीव दो भागोंमें विभक्त हैं—बद्ध जीव और मुक्त जीव।

बद्धजीव साधन द्वारा भगवान्‌की कृपा प्राप्त कर, मायाकी सुदृढ़ रज्जुको तोड़नेमें समर्थ होते हैं। हमारे महामहिम महर्षियोंने अनेक छान-बीनके पश्चात् तीन प्रकारके साधन स्थिर किये हैं—कर्म, ज्ञान और भक्ति।

वर्णाश्रमधर्म, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत, योग—इनको शास्त्रमें कर्माङ्ग कहा गया है। इन विभिन्न कर्मोंके भिन्न-भिन्न फल भी उन शास्त्रोंमें कहे गये हैं। उन फलोंका पृथक्-पृथक् विचार करने पर पता चलता है कि स्वर्ग भोग, मृत्युलोकका भोग, रोगशान्ति तथा उच्च कर्म करनेके सुअवसरकी प्राप्ति—ये ही उनके प्रधान फल हैं। इनमेंसे उच्चकर्म करनेके सुअवसरकी प्राप्ति रूप फलको पृथक् कर देने पर शेष समस्त प्रकारके फल ही मायिक प्रतीत होते हैं। स्वर्ग-भोग, मर्त्यसुख भोग, ऐश्वर्य आदि फल— जिन्हें जीव कर्मद्वारा प्राप्त करते हैं—सभी नश्वर हैं। ये सभी भगवानके कालचक्रमें पड़ कर विनष्ट हो जाते हैं। इन फलोंके द्वारा मायाका बन्धन खुलना तो दूर रहे, उससे और भी अधिक रूपमें कर्म वासनाएँ उत्पन्न होती हैं जो माया-बन्धनको और भी अधिक सुदृढ़ कर देती है। उच्चकर्मोंका सुयोग रूप फल भी निरर्थक ही होता है यदि उच्चकर्म वास्तवमें न किये जाँय। श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार कहते हैं—

धर्मः स्वनुष्ठितः विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

वर्णाश्रम धर्मका मूल तात्पर्य यह है कि स्वभावके अनुसार सांसारिक और शारीरिक कर्मोंके विभाग-द्वारा मनुष्य सहजसे सहज रूपमें संसार और शरीर-यात्राका निर्वाह कर सके। ऐसा होनेसे हरि कथाके अनुशीलनके लिये पर्याप्त समय मिलेगा। यदि कोई मनुष्य वर्णाश्रम धर्मका उत्तम रूपसे पालन तो करता है, परन्तु हरि-कथामें उसकी रुचि नहीं होती तो उसका सारा धर्मानुष्ठान व्यर्थका परिश्रम ही हो जाता है। कर्म द्वारा निश्चित रूपमें भव-समुद्रको पार नहीं किया जा सकता—इसे मैंने संक्षेपमें बतलाया।

ज्ञानको भी उच्चगति प्राप्त करनेमें साधन बतलाया गया है। ज्ञानका फल आत्मशुद्धि है। आत्मा जड़ातीत वस्तु है; परन्तु इस तत्त्वको भूल कर जीव जड़ाश्रित होकर कर्म-मार्गमें भटक रहा है। ज्ञान-चर्चाद्वारा यह जाना जाता है कि मैं जड़ नहीं—चिद्-वस्तु हूँ। ऐसा ज्ञान स्वभावतः 'नैष्कर्म्य' कहलाता है। इसका कारण यह है कि इसमें चिद्-वस्तुका कुछ-कुछ ज्ञान रहने पर भी चिद्वस्तुका नित्यधर्म—जो चिदास्वादन है प्रारम्भ नहीं होता। इस अवस्थाको प्राप्त हुए जीव आत्माराम कहलाते

हैं। परन्तु जब चिदास्वादन रूप चित्क्रिया प्रारम्भ हो जाती है, तब नैष्कर्म्य नहीं रहता। इसलिये देवर्षि नारदजीने कहा है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युत-भाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

अर्थात् नैष्कर्म्य रूप निर्मल ज्ञान भी भगवानकी भक्तिसे स्निग्ध न होने पर नितांत उपेक्षणीय होता है।

श्रीमद्भागवतमें और भी कहते हैं—

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

परम चैतन्य हरिमें एक ऐसा असाधारण गुण है, जड़ समस्त जड़मुक्त आत्माराम जीवोंको आकर्षण कर अपनी भक्तिमें लगा देता है।

अतएव कर्म उच्चकर्मका सुअवसर प्रदान कर और ज्ञान अपना नैष्कर्म्य स्वरूप परित्याग कर जब भक्तिसाधन करानेमें नियुक्त होते हैं, तभी कर्म और ज्ञानका साधन-अङ्ग कहा जा सकता है। उनकी स्वयं कोई साधन अंगता स्वीकृत नहीं है। इसलिये केवल भक्तिको ही साधन कहा गया है। कर्म और ज्ञान भक्तिके अधीन होने पर कहीं-कहीं साधनके रूपमें माने गये हैं, परन्तु भक्ति तो स्वभावतः ही साधन-स्वरूप है। इस विषयमें श्रीमद्भागवतका निर्णय स्पष्ट है—

न साधयति मां योगो न सांख्य धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

हे उद्धव! कर्मयोग, सांख्ययोग, वर्णाश्रम धर्म, वेद-पाठ, तपस्या या वैराग्य मुझे प्रसन्न नहीं कर पाते, केवल मात्र तीव्र भक्ति ही मुझे प्रसन्न करनेमें समर्थ है।

भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये भक्तिके अतिरिक्त और कोई भी उपाय नहीं है। साधन भक्ति नौ प्रकारकी होती है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्च्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। इनमेंसे श्रवण, कीर्तन और स्मरण—ये तीन प्रधान साधनाङ्ग हैं। भगवान्के नाम, रूप, गुण और लीला—इन चारों विषयोंका ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण होता है। इनमें भी श्रीनाम ही आदि और सर्व बीज-स्वरूप हैं। अतएव हरिनाम ही सब प्रकारकी उपासनाओंके मूल हैं। शास्त्रोंमें कहते हैं—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

कलिकालमें हरिनामके अतिरिक्त जीवोंकी दूसरी गति नहीं है। 'कलिकाल' शब्द द्वारा यह समझना होगा कि सभी समयोंमें हरिनामके बिना जीवोंकी गति नहीं है। विशेष रूपमें कलियुगमें दूसरे-दूसरे मंत्रादि साधन दुर्बल होनेके कारण केवल हरिनामका ही अवलम्बन करना उचित है, क्योंकि हरिनाम सबसे बढ़ कर वीर्यशाली है।

हरिनामके सम्बन्धमें पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा गया है—

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

श्रीजीव गोस्वामी इस श्लोककी व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

एकमेव सच्चिदानन्द-रसादिरूपं तत्त्वं द्विधाविर्भूतमित्यर्थः।

श्रीकृष्णतत्त्व अद्वय सच्चिदानन्द स्वरूप है। उनका दो रूपोंमें आविर्भाव होता है—(१) नामीके रूपमें श्रीकृष्णविग्रह तथा (२) नामके रूपमें श्रीकृष्णनाम। इसका मूलतत्त्व यह है कि श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं। शक्तिमान जो पुरुष हैं, उनके समस्त प्रकाश ही उनकी शक्तिके प्रकाश हैं। शक्ति ही अपने आधार रूप पुरुषको दूसरेके निकट प्रकाश करती है। शक्तिके दर्शन प्रभाव द्वारा कृष्णरूप प्रकाशित होता है और आह्वय-प्रभाव द्वारा कृष्णनाम विज्ञापित होता है। अतएव कृष्णनाम चिन्तामणि-स्वरूप कृष्ण-स्वरूप और चैतन्य-रस विग्रह स्वरूप हैं। नाम सर्वदा पूर्ण-स्वरूप हैं अर्थात् उनमें विभक्तियोंके योगसे "कृष्णाय नारायणाय" इत्यादि मंत्रादि निर्माणकी अपेक्षा नहीं होती। कृष्णनाम उच्चारित होते ही चित्तत्त्वमें कृष्ण-रस अकस्मात् उदित हो पड़ता है। नाम सदा विशुद्ध

होते हैं अर्थात् वे जड़ीय अक्षरोंकी भाँति जड़ाश्रय नहीं होते। नाम केवल चैतन्य रसमात्र हैं। नाम सदा मुक्त होते हैं, अतएव नित्यमुक्त हैं, वे कभी भी जड़से पैदा नहीं होते। जिन्होंने नाम-रसका पान किया है, वे ही केवल इस व्याख्याको समझनेमें समर्थ हो सकते हैं। जो नाममें जड़त्वकी कल्पना करते हैं, स्वयं चैतन्यरसास्वादन करनेमें असमर्थ हैं, वे इस व्याख्यासे सन्तुष्ट नहीं हो सकते हैं। यदि यह कहो कि हम निरन्तर जो नाम-उच्चारण करते हैं, वह जड़ीय अक्षरोंको आश्रय करके हुआ करता है; ऐसी दशामें नामको जड़से उत्पन्न वस्तु कहा जायगा; उसे नित्य मुक्त कैसे कहा जा सकता है? इस बहिर्मुख तर्कके उत्तर में श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः ।
सेवन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥

प्राकृत वस्तु ही प्राकृत इन्द्रिय-ग्राह्य होती है। कृष्णनाम अप्राकृत हैं। अतएव वे कदापि प्राकृत इन्द्रिय ग्राह्य नहीं हैं। तब जो नाम जिह्वासे प्रकाशित होता है, वह केवल आत्माके अप्राकृत आनन्दकी तदुपयोगी इन्द्रियमें स्फूर्त्ति मात्र है। भक्त जिस समय आत्माकी अप्राकृत रसनासे कृष्णनाम उच्चारण करते हैं, उस समय वह उच्चरित परमतत्त्व प्राकृत रसना पर आविर्भूत होकर नृत्य करने लगता है। आनन्दसे हास्य, स्नेहसे क्रन्दन, प्रीतिसे नृत्य जिस प्रकार अप्राकृत रसकी इन्द्रिय तक व्याप्त होते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णनाम-रसकी रसना तक व्याप्ति होती है। प्राकृत रसनासे कृष्णनाम उत्पन्न नहीं होता। साधन कालमें जिस नामका अभ्यास किया जाता है, वह यथार्थ नाम नहीं है। उसे छायानाम अथवा नामाभास कहा जा सकता है। नामाभास करते-करते क्रमोन्नति द्वारा बहुधा अप्राकृत नाममें रुचि होती देखी गयी है। वाल्मीकि और अजामिलके जीवन-चरित्र इस विषयमें ज्वलंत दृष्टान्त हैं।

जीवकी नाममें रुचि न होनेका कारण अपराध है। जो अपराध रहित होकर कृष्णनाम ग्रहण करते हैं, उनके हृदयमें चैतन्यरस-विग्रहरूप अप्राकृत श्रीहरिनामका उदय होता है। अप्राकृत नामका उदय होने पर हृदय प्रफुल्लित हो उठता है, नेत्रोंसे अश्रुधारा-प्रवाहित होने लगती है, तथा शरीरमें सात्त्विक विकार पैदा होने लगते हैं। अतएव श्रीमद्भागवतमें ऐसा कहा गया है—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥

जीव जिस समय हरिनाम ग्रहण करते हैं, उस समय उनका हृदय निश्चित रूपमें विकृत होगा, आँखों से निश्चय ही अश्रुधारा प्रवाहित होगी तथा शरीरमें अवश्य ही रोमांच होगा। जो कृष्णनाम उच्चारण तो करते हैं, परन्तु उनमें ऐसे विकार लक्षित नहीं होते, उनका हृदय अपराधके कारण अतिशय कठोर हो चुका है—ऐसा समझना चाहिए।

निरपराध होकर हरिनाम लेना साधकका नितांत कर्तव्य है। अतएव अपराध न हो जाय, इसके लिये अपराध कितने प्रकार हैं, इसका ज्ञान होना आवश्यक है।

शास्त्रोंमें हरिनामके सम्बन्धमें दस प्रकारके अपराधोंका उल्लेख है—(१) साधु-निन्दा, (२) शिव आदि देवताओंको भगवानसे पृथक् स्वतंत्र मानना, (३) गुरुकी अवज्ञा करना, (४) वेदादि सत्-शास्त्रोंकी निन्दा करना, (५) हरिनामके माहात्म्यको केवलमात्र प्रशंसा समझना, (६) हरिनाममें अर्थ कल्पना अर्थात कृष्ण, राम आदि नाम कल्पित हैं, ऐसी धारणा रखना, (७) नामके बल पर पाप करना, (८) दूसरे-दूसरे शुभ कर्मोंके साथ हरिनामको समान समझना (९) अश्रद्धालु व्यक्तिको हरिनामका उपदेश करना (१०) नामका माहात्म्य श्रवण करके भी उसके प्रति अविश्वास रखना।

साधुभक्तोंके प्रति अश्रद्धा प्रकाश करनेसे तथा साधु-चरित्र महाजनोंकी निन्दा करनेसे हरिनामके प्रति अपराध होता है। अतएव जो हरिनामका आश्रम करेंगे, उनको सर्वप्रथम वैष्णव-अवज्ञाकी प्रवृत्तिको सर्वतोभावेन परित्याग करनी चाहिए। वैष्णवोंके कार्योंके प्रति सन्देह होने पर साथ ही साथ

निन्दा न करके उसका तात्पर्य अनुसंधान करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। अतएव साधुजनोंके ऊपर श्रद्धा करना ही कर्त्तव्य है।

शिव आदि देवताओंको भगवानसे पृथक् समझना नामापराध कहा गया है। भगवत् तत्त्व एक और अद्वितीय है। शिव आदि देवताओंकी भगवान् से पृथक स्वतंत्र कोई सत्ता नहीं है। शिव आदि देवताओंको भगवानका गुणावतार अथवा भगवद्-भक्त मानकर सम्मान करनेमे भेदज्ञान नहीं रहता। जो लोग महादेवको एक पृथक् अर्थात् स्वतंत्र देवता मानकर शिव और विष्णुकी पूजा करते हैं, वे महादेवकी भगवत्ता स्वीकार नहीं करते हैं। इससे वे विष्णु और शिव दोनोंके प्रति अपराधी हो पड़ते हैं। जो हरिनाम करते हैं, उनको इस प्रकारके भेद-ज्ञानका भली प्रकार त्याग करना चाहिए।

गुरुदेवकी अवज्ञा करना एक नामापराध है। जो नाम-तत्त्वकी सर्वोत्तमताकी शिक्षा देते हैं, उनको आचार्यरूपी भगवत्-प्रेष्ठ समझना चाहिए। उनके प्रति दृढ़ भक्ति करके हरिनाममें अचला श्रद्धा प्राप्त करनी चाहिए।

सत्शास्त्रोंकी कदापि निन्दा नहीं करनी चाहिए। वेदादि शास्त्रोंमें भागवत धर्मका वर्णन है—श्रीनामका बहुत ही माहात्म्य बतलाया गया है। उन शास्त्रोंकी निंदा करनेसे हरिनामापराध होता है। वेद आदि शास्त्रोंमें सर्वत्र ही हरिनामका माहात्म्य बतलाया गया है—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

इस प्रकारके सत् शास्त्रोंकी निंदा करनेसे हरिनाम में किस प्रकार प्रीति हो सकती है?

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि वेदादि शास्त्रोंमें हरिनामका जो माहात्म्य वर्णन किया गया है, वह केवल नामकी प्रसंशामात्र है। जिनकी ऐसी धारणा है, वे नामापराधी हैं। ऐसे लोग हरिनाम करके भी हरिनामका वास्तविक फल प्राप्त नहीं कर पाते। ऐसे लोग यह समझते हैं कि जिस प्रकार कर्मकाण्डमें रुचि उत्पन्न करनेके लिये कर्मकाण्डकी बढ़ा चढ़ाकर प्रशंसा बतलायी गयी है, उसी प्रकार शास्त्रोंमें हरिनामकी भी बढ़ा-चढ़ा कर फल-श्रुति दी गयी है। ऐसा समझनेवाले बड़े दुर्भागा हैं। इसके विपरीत भाग्यवान व्यक्तियोंका विश्वास इस प्रकार होता है—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम्॥

संसारसे निर्वेद प्राप्त सब प्रकारके भयोंसे छुटकारा पानेकी इच्छा रखने वाले योगीके लिये हरिनामका कीर्तन ही एकमात्र कर्तव्य है। ऐसा विश्वास करने वाले व्यक्ति ही हरिनामका वास्तविक फल प्राप्त करते हैं।

नामाभास और नामका भेद नहीं समझ कर कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि नाम अक्षरमय है। अतएव श्रद्धा नहीं रहने पर भी नाम लेनेसे फल होगा ही। वे लोग अजामिलका दृष्टान्त देते हैं तथा "सांकेत्य पारिहास्य वा" आदि शास्त्र-वचनोंका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यह बात तो पहले ही बतलायी जा चुकी है कि हरिनाम चैतन्य रस विग्रह हैं तथा प्राकृत इन्द्रियग्राह्य नहीं हैं। अतएव निरपराध होकर नामाश्रय नहीं करनेसे नामका फलोदय सम्भव नहीं है। जो अश्रद्धापूर्वक नामोच्चारण करते हैं, उनको नामका फलोदय सम्भव नहीं होता। अश्रद्धालु व्यक्तियोंके नामोच्चारणका फल यह होता है कि कुछ दिनोंमें उनकी नामके प्रति श्रद्धा पैदा हो सकती है। इसलिये अश्रद्धापूर्वक अर्थवाद करके नामको जड़ात्मक अक्षर-रूपमें जो कर्मकाण्डका अङ्ग समझते हैं अथवा ऐसा ही प्रचार करते हैं, वे नितान्त बहिर्मुख और नामापराधी हैं। वैष्णवजन इस अपराधका यत्नपूर्वक वर्जन करेंगे।

कुछ लोग हरिनामाश्रय करके ऐसा समझते हैं कि हमने अब समस्त प्रकारके पापोंके लिये एक सस्ती औषधि प्राप्त कर ली है। इस विश्वासके साथ वे ठगी, राहजनी, डकैती, चोरी या बदमाशी आदि पाप कर्मोंको करके फिर हरिनाम कर लेंगे, जिससे उनके सारे पाप कट जायेंगे। ऐसा समझने वाले

व्यक्ति नामापराधी हैं। जो लोग नामाश्रय करते हैं, वे एक बार चिद्रसका आस्वादन कर फिर कभी भी जड़ीय असत् वस्तुओंमें आसक्त नहीं होते।

कुछ लोगोंका ख्याल ऐसा होता है कि यज्ञ आदि कर्म, दानादि धर्म, तथा तीर्थ यात्राकी चेष्टाएँ—यह सब जिस प्रकार शुभकर हैं, नाम भी वैसी ही कोई चीज है। ऐसे व्यक्ति नामापराधी हैं। नाम सदा चिद्रस-स्वरूप हैं। अन्यान्य सारे सत्कर्म ही जड़मय हैं। अतएव वे नामके विजातीय हैं। जो लोग इन क्रियाओं या सत् कर्मोंको नामके समान समझते हैं, वे वास्तवमें नामरसका आस्वादन नहीं कर सके हैं। जिस प्रकार हीरा और काँचमें भेद है, ठीक उसी प्रकार हरिनाम और दूसरे-दूसरे शुभ कर्मोंमें वस्तुगत भेद है।

अश्रद्धालु व्यक्तियोंको हरिनामका उपदेश या मंत्र देनेवाले व्यक्ति नामापराधी हैं। जिस प्रकार शूकरको मुक्ताफल देनेसे कुछ लाभ नहीं होता, उलटे मुक्ताफलका ही अपमान या अवज्ञा करनी हो जाती है, उसी प्रकार जिन लोगोंको हरिनामके प्रति उपयुक्त श्रद्धाका अभाव है, उनको नामोपदेश करना नितांत अन्याय है। ऐसे लोगोंको हरिनामके प्रति किस प्रकार से श्रद्धा हो, इसके लिये प्रयत्न करना उचित है। श्रद्धा होनेके बाद नामोपदेश करना उचित है। जो लोग अपनेको गुरु अभिमान कर अपात्रको भी हरिनामका उपदेश करते हैं, वे नामापराधके कारण अधःपतित हो जाते हैं।

हरिनामका माहात्म्य श्रवण करके भी जो नामके प्रति ऐकान्तिक श्रद्धा न करके अन्यान्य साधनोंका—कर्म, ज्ञान या योगका आश्रय त्याग नहीं करते, वे भी नामापराधी हैं।

इस प्रकार नामापराध वर्जन नहीं करनेसे हरिनाम उदित नहीं होते। कलियुग-पावनावतारी श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु संसारी जीवोंके नाना प्रकारके दुःखोंको देख कर दयार्द्र चित्तसे ऐसा उपदेश किये हैं—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

तृणसे भी अपनेको तुच्छ मान कर, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होकर स्वयं अभिमान शून्य और दूसरोंका मान देनेवाला बनकर जीव हरिनाम-संकीर्तनमें अधिकार प्राप्त करता है। व्यवहार शुद्धिके साथ हरिनाम ग्रहण करनेकी व्यवस्था ही इस वाणी का मुख्य तात्पर्य है। जो अपनेको सबसे अधिक दीन-हीन समझते हैं, वे कभी भी साधुकी निंदा नहीं कर सकते, शिव आदि देवताओंकी वेद-बुद्धि द्वारा अवज्ञा नहीं करते, श्रीगुरुदेवके प्रति कदापि अवज्ञा नहीं करते, सत्-शास्त्रोंकी निंदा नहीं करते तथा हरि-नामके माहात्म्यको सत्य मानते हैं। वे शुष्कज्ञानजात तर्क द्वारा 'हरि' शब्दमें निर्गुण-ब्रह्मवादकी कल्पना नहीं करते, नामके बल पर पाप-कर्म नहीं करते, दूसरे सत्कर्मोंके साथ हरिनामको समान नहीं मानते, अश्रद्धालु व्यक्तियोंको हरिनाम नहीं देते तथा नामके प्रति तनिक भी अविश्वास नहीं रखते। वे स्वभावतः दस प्रकारके नामापराधसे दूर रहनेकी चेष्टा करते हैं। कोई उनको उपहास करने पर अथवा कोई उनका अहित करने पर भी वे उसका उपकार ही करते हैं। वे जगतका समस्त कार्य करने पर भी स्वयं अपनेमें भोक्ता या कर्त्ताका अभिमान नहीं रखते। वे अपने को जगतका दास मानकर जगतकी सेवामें ही लगे रहते हैं।

ऐसे अधिकारी व्यक्तिके मुखसे जब हरिनाम उच्चरित होता है, तब अन्तः-स्थित चिज्जगतसे बिजलीकी भाँति चित् ज्योति व्याप्त होकर जगतके जीवोंके माया विकार रूप अन्धकारको दूर देती है। अतएव, महात्माओं! अपराध-रहित होकर निरन्तर हरिनामका कीर्तन कीजिए। हरिनामके बिना जीवोंके लिये और कोई भी दूसरा सहारा नहीं है। इस दुस्तर भव-समुद्रमें डूबते हुए व्यक्तिके ज्ञान या कर्म आदिका सहारा लेना केवल तृणका सहारा लेकर महासागर को पार करनेकी इच्छाकी भाँति सर्वथा निरर्थक है। हरिनाम रूप महापोत (बड़ा जहाज) का अवलम्बन करके इस दुस्तर भव-समुद्रको पार कीजिए।

—जगद्गुरु श्रीभक्तिविनोद ठाकुर

श्रीयमुनाष्टक

(१)

जय जय जीवन मूरि, जगत जाहिर जन जन की ।
हरि नख चन्द्र चकोरि, महामोहनि मन मन की ॥
कल कल कमला-कान्ति, करन कारन कनकन की ।
धरणि-धाम ध्रुव धाम, धीर धारनि धन धन की ॥
जय हरनी यम यातननि, पाचक करनि अपाचि जय ।
सर सरि सागर सूर सुभ, सूर-सुता सुभ साँचि जय ॥

(२)

जप तप सजम नेम-निरत मुनि जनन जगावत ।
कोमल कलरव करत, कालत किलकत किलकावत ॥
रवि-तनया के तीर, तरुन तरुनी गन न्हावत ।
हरि कमला निज रूप, विविध धर मनहु लुभावत ॥
धाम धाम तिन लोभ बसि, चसकनि चित चाहन चये ।
गणप गौरि वाहन सहित, महादेव पाहन भये ॥

(३)

चलि चलि चावनि चाल, चतुर चित चयनि चुरावत ।
छवनि छटनि छवि छाय, छहरि छुरि छरनि छुरावत ॥
जग-जन-जीवन जमन, जबरि जमि जतनि जुरावत ।
झटकि झंझटनि झाम, झमकि झुरि झरनि झुरावत ॥
यम-भय हरि यमुना पयहिं, पियहि पियारन पालिनी ।
निज निशङ्कनी शान सों, शङ्क शमनि श्री शालिनी ॥

(४)

तकि तोरनि तम तोम, तमकि तुर तारन तरनी ।
थिरतनि थापनि थकनि, थमनि थर थारन थरनी ॥
दुरतनि दावनि दुअन-दवनि दुख दारिद दरनी ।
धाम धाम धरि धाम, धवलता-धुरि धर धरनी ॥

नदी नदन तें नित्य नव, नन्दनंदन की नेहिनी ।
सूर-सुता असरन-सरनि, साधु-सरनि गन सेहिनी ॥

(५)

प्रगट प्रीति-परतीति-प्रथुल प्रगटावनि पावनि ।
फेरनि फद फद फुदकि, फुरनि फरहनि फबि फह फावनि ॥
बहि बहि बहु बुहि बोहि, वमकि वलवल बल बावनि ।
मोहन माया मोहिनी, दया मया ममता भई ।
सूर-सुता सब भाँति सों, प्रभामई प्रभुताभई ॥

(६)

कढ़ि कलिन्द तें कितिक, कलत कानन किलकावत ।
माधव मधुकी मधुपि, बनी मधुबन में भावत ॥
धरधरात धुनि धरत, धरनि धारन सों धावत ।
पुनि प्रयाग में पैठि, परम पुण्यन प्रगटावत ॥
गिरा सङ्ग सङ्गम करत, जड़ जङ्गम-हित गङ्ग सों ।
अलख अंग की अंगिनी, अलख होत निज अंग सों ॥

(७)

कहुँ कलिन्दी के कूल, कदम्बनी कोकिल किलकत ।
कहुँ खंजन खुसी, खुसी खुलि खेलत खुलकत ॥
गिल गिल गिलगत कहूँ, गमकि गिलरी गन गमकत ।
घेरि-घेरि घर कहूँ, घुघुकि घुग्घू घन घुघुकत ॥
कहुँ हुमकत कल हंस हैं, कुड़कत कहूँ कपोत हैं ।
कहुँ किलकत कीरन कलित, "कृष्ण-कृष्ण" कल होत हैं ॥

(८)

नेह निर्झरी नई, नवल नीलम सी निर्गल ।
ब्रज बिलसन के विमल, हँसनि हासनि सों अविकल ॥
हरि अनङ्ग की अङ्ग, अमल अंगनि रति रूपा ।
रुचिर रास में रुचत, भई मनु द्रवि रस रूपा ॥
तरल तरङ्गिनी झपट, पटकि पटकि के भाँवरी ।
जमुन साँवरे रङ्ग सों, भई फिरवत है साँवरी ॥

—श्रीकमलाकर "कमल"

उपनिषद्-वाणी

(श्वेताश्वतर ४)

परमब्रह्म परमेश्वर दिव्य चैतन्यमय धाममें देवताओंसे परिसेवित होकर विराजमान हैं। वेद मूर्त्ति धारण कर उनकी सेवा करते हैं। जो व्यक्ति उन परमेश्वरको जान नहीं लेता, वह यदि सम्पूर्ण वेदका अध्ययन भी कर ले तो क्या लाभ हो सकता है? अर्थात् उसका सारा वेद-अध्ययन वृथा परिश्रम मात्र है। परन्तु जो उनको जान लेता है, वही अच्युत भगवानके परमधामका अधिकारी होता है। वहाँ जाकर फिर कभी भी लौटना नहीं पड़ता।

समस्त वेदके मंत्ररूप छन्द, यज्ञ, क्रतु (ज्योतिष्टोमादि विशेष यज्ञ) विविध प्रकारके व्रत, शुभ-कर्म, सदाचार उनके नियम और भूत, भविष्यत् वर्तमान पदार्थसमूह—सबका वे मायी पुरुष ही सृजन करते हैं। इस जगत्में परमेश्वरका साक्षात्कार करनेके लिये प्रयत्नशील पुरुषोंको छोड़कर बाकी सभी जीव मायासे बँधा जाकर भीषण दुःख पाते हैं।

मायाका दूसरा नाम 'प्रकृति' है। मायी-पुरुषको 'महेश्वर' भी कहते हैं। उस प्रकृतिके ही अङ्गसे उत्पन्न कार्य-कारणमें जगत् व्याप्त है। मायाधीश परमेश्वर समस्त योनियोंके एकमात्र अध्यक्ष हैं तथा समस्त कारणोंके मूल कारण हैं। परमेश्वरकी अध्यक्षतामें प्रकृति जगत्की सृष्टि करती है। परमात्मा सबके नियामक हैं। सम्पूर्ण जगत् उनसे ही उत्पन्न होता है एवं प्रलयके समय उनमें ही प्रविष्ट हो जाता है उन सर्वनियन्ता, वरदाता, स्तुतियोग्य, परमदेव, सर्वप्रिय, सर्वेश्वरको जान लेने पर जीव परमशान्तिका अधिकारी हो जाता है। सबके शासक रुद्ररूप परमेश्वर इन्द्र आदि समस्त देवताओंके उद्भवस्थल और जनक हैं। वे सबके अधिपति और सर्वज्ञ हैं। वे सृष्टिके प्रारम्भमें हिरण्यगर्भके भी जनक होनेके कारण सर्वादि हैं। वे परमेश्वर हमें विशुद्ध बुद्धि प्रदान करें।

जो सर्वनियन्ता परमेश्वर देवताओंके भी अधिपति हैं, जो समस्त लोकोंके आश्रय हैं, जो अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे दो और चार पैरोंवाले समस्त प्राणियोंके शासक हैं, उन सबके नियामक, सर्वाधार, आनन्दस्वरूप परमेश्वरको ही श्रद्धापूर्वक हविः अर्पण करनी चाहिए अर्थात् उनकी ही पूजा करनी चाहिए।

सूक्ष्मसे भी परम सूक्ष्म रूपमें जीवात्माकी हृदय-गुफामें विराजमान होनेके कारण जो जीवात्माके अत्यन्त समीप हैं, जो अखिल विश्वके रचयिता हैं, विश्वरूप हैं, अनेकों रूप धारण करनेवाले हैं, सर्वव्यापी हैं, उन परम मङ्गलमय परमेश्वरको जानलेने पर जीव अत्यन्त महती शक्तिका अधिकारी हो सकता है।

वे परमेश्वर स्थितिकालमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी रक्षा करते हैं। वे सम्पूर्ण चराचर जगत्के स्वामी हैं। वेदज्ञ ऋषिगण उनका ध्यान करते हैं; उनके ही स्मरण और चिन्तनमें अपने चित्तको संलग्न रखते हैं। उनको जान लेने पर मृत्युका पाश काटा जा सकता है अर्थात् मृत्युको पार किया जा सकता है। मक्खन में घी की तरह सर्वसार और सूक्ष्म होनेके कारण जो अदृश्य रूपमें अवस्थित हैं, उन सर्वव्यापी परमेश्वर को जान लेने पर जीव सब प्रकारके बन्धनोंसे छुटकारा पा जाता है।

सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले महात्मा सर्वव्यापी, परमदेव जीवोंकी हृदय-गुहामें सदा वर्तमान

हैं। उनके गुणोंके प्रभावको जानकर निर्मल अन्तःकरण और निश्चयात्मिका बुद्धियुक्त जीव एकान्त मनसे उनका चिन्तन कर जन्म-मृत्युके पाशको छेदन करने में समर्थ होते हैं।

अज्ञान रूप अन्धकारका नाश होने पर उन परमात्माका साक्षात्कार किया जा सकता है। वे तत्त्व न दिन हैं, न रात, और न तो सत् हैं न असत्, वे इन सबसे विलक्षण अविनाशी, कल्याणमय उपास्य-देव हैं, जो परम्परासे चलते आ रहे साधन द्वारा अनादिकालसे उपासित होते चले आ रहे हैं। उन परमपुरुषको कोई ऊपर से या नीचेसे अथवा बीचसे धारण नहीं कर सकता क्योंकि वे कभी भी प्राकृत इन्द्रियोंकी पकड़में आनेवाले तत्त्व नहीं हैं। किसी भी पदार्थसे उनकी तुलना नहीं दी जा सकती है। उनका एक नाम 'महद्यशः' भी है। उनको जानने, पकड़ने या ग्रहण करनेमें वे ही समर्थ होते हैं, जो उनका रहस्य जान कर उनकी उपासना करते हैं। उन परमेश्वरका स्वरूप प्राकृत नेत्रोंसे नहीं देखा जा सकता है। अतएव साधारण लोग उनको देख नहीं पाते। परन्तु निर्मल अन्तःकरण वाले जीव अपनी प्रेम भक्ति के नेत्रोंसे उनका दर्शन करते हैं उन परमेश्वरके नाम, रूप, गुण और लीला आदिके प्रभावका श्रवण करते-करते जब अन्तःकरण निर्मल हो जाता है, तब जीव भगवान्‌के साक्षात्कारके योग्य होता है तथा उससे जन्म-मृत्युके चक्रसे सदाके लिये छुटकारा पा लेता है। वे परमेश्वर ही सबको जन्म-मरणसे मुक्त कर सकते हैं—ऐसा जानकर संसारके भयसे भीत जीव भगवानकी शरण लेते हैं। अतएव हे परमेश्वर! आप हमें जन्म-मरणके महान् भयसे उबार लें। आप हम पर प्रसन्न हों। आपके अप्रसन्न होने पर हमारा सब कुछ नष्ट हो जायगा।

(श्वेताश्वतर ५)

ब्रह्मासे अत्यन्त श्रेष्ठ, अनन्त, अविनाशी, देश-कालसे परे, मायासे अतीत परमेश्वरके आश्रित विद्या और अविद्या वर्त्तमान है। परिवर्त्तन-शील क्षर तत्त्वको अविद्या कहते हैं। इसके विपरीत जन्म-मरणसे रहित अविनाशी कूटस्थ तत्त्वको अक्षर तत्त्व कहते हैं। इसीको उपनिषद्में विज्ञानात्मा भी कहा गया है। इन क्षर-अक्षर दोनों तत्त्वोंके शासक, और स्वामी परमेश्वर इन दोनोंसे सम्पूर्ण विलक्षण हैं। वे सर्वशक्तिमान परमदेव मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट और पतंग आदि समस्त योनियों और समस्त कारणोंके अधिपति हैं। उन्होंने सृष्टिके प्रारम्भमें हिरण्यगर्भ ब्रह्माको सब प्रकारके ज्ञानसे पुष्ट किया था। सृष्टिके समय वे एक ही प्रकृतिको अनेक प्रकार से (मन, बुद्धि, अहंकार और आकाश आदि पंच भूतोंके रूपमें) विस्तार करते हैं और प्रलयके समय सबका ध्वंस कर देते हैं। वे सबकी सृष्टि कर उनके अन्तर्यामीके रूपमें वर्तमान रह कर सबके ऊपर शासन करते हैं। जिस प्रकार सूर्य ऊपर-नीचे, आमने-सामने चारों ओर प्रकाश फैलाते हैं, उसी प्रकाश सर्व-ऐश्वर्य पूर्ण परमेश्वर अकेले ही सारी वस्तुओंको प्रकाशित कर सबमें कार्य शक्तिकी स्फूरणा कर विराजमान हैं।

सम्पूर्ण विश्वके परम कारण परमात्मा अपने संकल्पसे विचित्र जगत्‌की रचना करते हैं तथा जगत् के साथ कर्मके अनुसार जीवोंका सम्बन्ध स्थापन करा कर अकेले सम्पूर्ण जगत्‌का नियमन और शासन करते हैं। उन परमेश्वरके श्वासके रूपमें वेद प्रकाशित हैं। वेदोंमें गूढ़रूपसे उन्हींका वर्णन है। वेद कहाँसे प्रकट हुए हैं—इस तथ्यको ब्रह्माजी जानते हैं। ब्रह्मा के अतिरिक्त जो प्राचीन देवता और ऋषि लोग उनको जान सके हैं, वे तन्मय होकर आनन्द स्वरूपमें मग्न हुए हैं।

जीव प्रकृतिके गुणोंके अधीन रहने पर अपने किये हुए कर्मोंका भोग करनेके लिये नाना प्रकारकी

योनियोंमें भटकता है और मरनेपर इनकी तीन प्रकारसे गति होती है—देवयान, पितृयान और जन्म-मरणके चक्करमें भ्रमण। जब तक वह मुक्त नहीं होता, तबतक वह कर्मोंकी प्रेरणासे इस संसार-चक्रमें घूमता रहता है। देवयान-गतिद्वारा जीव ब्रह्मलोकमें गमन करता है। वहाँसे फिर लौटता नहीं है अर्थात् जन्म-मरणके चक्करसे सदाके लिये छुटकारा पा लेता है।

मनुष्यका हृदय अगूँठेके बराबर होनेके कारण वहाँ पर विराजमान परमात्माको अंगुष्ठमात्रका कहा गया है। किन्तु वे त्रिगुणातीत हैं तथा सूर्यकी भाँति ज्योतिर्मय हैं। अज्ञानरूप अन्धकार उनके श्रीचरणके निकट नहीं पहुँच सकता है। परन्तु परमात्मासे पृथक् जीवात्मा लौह कण्टकके अगले भागके समान अतिशय सूक्ष्म होने पर भी बुद्धि, अन्तःकरण, अहंता, ममता और आसक्ति आदि द्वारा स्थूल-सूक्ष्म शरीरोंमें बँध जाता है।

पहले जीवात्माका स्वरूप आराके अग्रभाग (लोहेके काँटेके अगले भाग) के समान बतलाकर उसे पुनः केशके अगले भागको एक सौ भाग करके उसके भी एक भागके सौवें भागके बराबर कहा जा रहा है। जड़ीय वस्तुके उदाहरण द्वारा चेतन वस्तुके परिमाणकी धारणा करना असंभव है। फिर भी इन उदाहरणोंसे यह समझना होगा कि जीवका स्वरूप अतिशय सूक्ष्म है। भगवान् श्रीचैतन्य देवके उपदेश में सूर्य-किरण और अग्नि-स्फुलिंग (चिनगारी) का दृष्टान्त दिया गया है। चेतन और सूक्ष्म पदार्थ का जड़ और स्थूल पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। फिर भी सूक्ष्म होने पर भी जीवकी चेतना शरीरमें सर्वत्र ही व्याप्त होती है। उसे "गुणाद् वालोकवत्" अर्थात् प्रकाशकी भाँति गुणयुक्त बतलाया गया है। तात्पर्य यह है कि एक घरके भीतर किसी एक स्थान पर प्रकाश (दीपक) रखनेसे जिस प्रकार उसका प्रकाश सारे घरमें फैल जाता है, उसी प्रकार जीवका स्वरूप सूक्ष्म होने पर भी शरीर चाहे जितना भी छोटा या बड़ा क्यों न हो उसमें सब जगह चेतनता व्याप्त होती है। सूक्ष्म होने पर भी जीव अनन्त भावयुक्त होने में समर्थ है। वास्तवमें जीवात्मा स्त्री, पुरुष या नपुंसक नहीं है, परन्तु जब वह जिस शरीरमें प्रवेश करता है, तब उस शरीरके अनुरूप स्वभावयुक्त हो पड़ता है। संकल्प, स्पर्श, दृष्टि, ममता, भोजन और वृद्धि—इनके द्वारा सजीव शरीरकी वृद्धि और जन्म होता है। अर्थात् स्त्री और पुरुषके परस्पर मोह पूर्वक संकल्प, स्पर्श और दृष्टिपात द्वारा सहवास होने पर जीवात्मा गर्भमें प्रवेश करता है। फिर माताके भोजन और जलपानसे बने हुए रसके द्वारा उसकी वृद्धि होकर जन्म होता है। भिन्न-भिन्न योनियोंमें जीवोंकी उत्पत्ति और वृद्धि भिन्न-भिन्न प्रकारसे होती है। किसी योनिमें तो संकल्पमात्रसे ही जीवोंका पोषण होता रहता है; जैसे कछुएके अंडोंका; किसी योनिमें आसक्तिपूर्वक स्पर्शसे होता है, जैसे पक्षियोंके अंडोंका; किसी योनिमें केवल आसक्तिपूर्वक दर्शनमात्रसे ही होता है, जैसे मछली आदिका, किसी योनिमें अन्नभक्षण और जलपानसे होता है, जैसे मनुष्य, पशु आदिका; और किसी योनिमें वृष्टिमात्रसे ही हो जाता है, जैसे वृक्ष-लता आदिका। इस प्रकार नानाप्रकारसे सजीव शरीरोंका पालन पोषण, तुष्टि-पुष्टिरूप वृद्धि और जन्म होता है। जीवात्मा अपने कर्मानुसार उनका फल भोगनेके लिये इस प्रकार विभिन्न लोकोंमें गमन करता हुआ एकके बाद दूसरा क्रमसे नाना शरीरोंको बार-बार धारण करता रहता है।

जीवात्मा अपने किये हुए कर्मोंके संस्कारसे और बुद्धि, मन, इन्द्रिय तथा पंचभूत इनके समुदायरूप शरीरके धर्मोंमें अहंता-ममता आदि अपने गुणोंके वशीभूत होकर अनेकानेक शरीर धारण करता है। परन्तु इस प्रकार जन्म लेनेमें यह स्वतन्त्र नहीं है, बल्कि अपने कर्मोंके अनुसार दैवकी प्रेरणासे वह जन्म लेनेको बाध्य होता है। तत्त्वज्ञानी महापुरुष इस रहस्यको भली भाँति जानते हैं। सर्वव्यापक

परमात्मा जीवात्माकी भाँति विकारी नहीं हैं। वे सब प्रकारके विकारोंसे सर्वथा शून्य हैं। वे सबके आधार, सर्वशक्तिमान एवं सर्व व्यापक हैं। उन सर्वेश्वर पुरुषोत्तमको जान लेने पर जीवात्मा सब प्रकार के बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

इस रहस्यको समझ कर मनुष्यको जितना शीघ्र हो सके उन परम सुहृद, परमदयालु, परम प्रेमी, सर्वशक्तिमान, सर्वाधार सर्वेश्वर परमात्माको जानने और पानेके लिये व्याकुल हो श्रद्धा और भक्तिभावसे उनकी आराधनामें लग जाना चाहिए। नहीं तो संसार-चक्रसे छुटकारा पानेका दूसरा कोई भी उपाय नहीं है।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज

धर्मके नामपर धनका दुरुपयोग (?)

कुछ दिन पहले बम्बईसे प्रकाशित होनेवाले 'नव-भारत टाइम्स' नामक दैनिक पत्रमें भारतके प्रधान-मन्त्री श्रीनेहरूजीका माऊंट आबूमें दिया गया एक भाषण छपा था, जिसका शीर्षक था—'धर्मके नाम पर धनका दुरुपयोग'। इस भाषणमें श्रीनेहरूजीने यह बतलाने कि चेष्टा की है कि आजकल धर्मके नाम पर किस प्रकार धनका दुरुपयोग हो रहा है और किस प्रकार धार्मिक संस्थाओं पर अंकुश लगा कर उस धनका दुरुपयोग होने से बचाया जा सकता है। परन्तु सच बात तो यह है कि आजकल सारे विश्वमें केवल धर्मके नाम पर ही नहीं, अपितु राजनीतिके नाम पर भी धनका अधिक दुरुपयोग हो रहा है। उच्च न्यायालयोंमें कई एक ऐसे मुकदमें हो चुके हैं, जिससे पता चलता है कि जिस प्रकार धार्मिक संस्थाओंके अधिकारी और मठाधीश आदि क्रिमिनल और सीविल केसोंमें फँसे हैं, उसी प्रकार उससे कहीं अधिकरूपमें राजनैतिक क्षेत्रमें कितने ही मिनिष्टर तथा उच्च सरकारी आफिसर भी क्रिमिनल और सिविल केसोंमें फँसे हुए हैं। उनमेंसे कितनों ही सरकारी नौकरीसे हटा दिया गया है, कितनों-को चेतावनी देकर छोड़ दिया गया है तथा कितनोंको जेलमें बन्द कर दिया गया है। हमारा एक पड़ोसी देश इसका ज्वलंत उदाहरण है। वहाँ मन्त्रि-मण्डलके नये-पुराने अधिकांश मन्त्रियों और उच्च पदस्थ सरकारी कर्मचारियोंको जेलके सिकंजोंमें बन्द कर दिया गया, उन पर धनके दुरुपयोग और ठगीका गम्भीर आरोप लगाया गया उन्हें राजनैतिक जीवनसे जबरदस्ती संन्यास दे दिया गया, और कितनोंके ऊपर आज भी फौजदारी मुकदमें जारी हैं।

यदि इस विषयकी कोई निर्भर योग्य सूची बनायी जाय कि किस क्षेत्रमें धनका कितना दुरुपयोग हुआ है, तो पता चलेगा कि धार्मिक क्षेत्रकी अपेक्षा राजनीति-क्षेत्रमें जनताके धनका बहुत ही अधिक दुरुपयोग हुआ है और आज भी हो रहा है। मुझे यह नहीं कहना है कि चूंकि राजनीति क्षेत्रमें जनताके धनका दुरुपयोग हो रहा है, इसीलिये धर्म-क्षेत्रमें भी धनका दुरुपयोग होना दोषकी बात नहीं है; धनका दुरुपयोग चाहे किसी भी क्षेत्रमें क्यों न हो, बहुत ही खेदका विषय है। धार्मिक क्षेत्रमें यदि कोई साधु-संन्यासी या मठाधीश धर्म या भगवान्‌के नाम पर धन संग्रह करता है और मनचाहे रूपसे उस धनका दुरुपयोग करता है, तो ऐसा व्यक्ति सर्वतोभावसे दण्डनीय है, इसमें सन्देह ही क्या है?

परन्तु इसके साथ-साथ एक और भी विचारणीय बात है। वह यह कि जिस प्रकार सरकार राजनैतिक क्षेत्रमें प्रजाकी भौतिक सुख-सुविधाकी वृद्धिके लिये

जनतासे कर (Tax) वसूल कर सकती है, उसी तरह अनुभवी साधु-संन्यासी और धार्मिक संस्थाओंके अधिकारी भी जनताकी पारमार्थिक-प्रगति के लिये जनतासे भिक्षाके रूपमें पारमार्थिक कर (Tax) वसूल कर सकते हैं । इस दृष्टिसे सरकार और धर्माधिकारी साधु-संन्यासी—दोनों ही प्रजाके कल्याण कारी हैं और इस प्रकार ये दोनों ही अपने अपने क्षेत्रमें उचित कार्य करें तो फिर दुःखकी बात ही क्या है ? वैसी दशामें जनता सब तरहसे अर्थात् भौतिक और पारमार्थिक दोनों तरफसे ही सुखी बन सकती है । परन्तु खेदकी बात तो यह है कि यदि सरकार और धार्मिक संस्थाओंके अधिकारी वर्ग—इनमेंसे कोई एक भी अपना कर्त्तव्य भूल कर जनताके धनका दुरुपयोग कर उनके जीवनसे खेलवाड़ करने लगता है, तब जनता दुःखी हो पड़ती है और यदि दोनों तरफसे उनके धनका दुरुपयोग होने लगा तो फिर कहना ही क्या है ? यह तो प्रजाके लिये सर्वनाशकी सूचना है ।

मुझे तो ऐसा लगता है कि आजकल ऐसी ही दयनीय परिस्थिति उपस्थित हो गयी है, जिसमें जनताको न तो सही-सही नागरिक बननेकी सुविधा है और न पारमार्थिक बननेकी । जिधर ही देखिये अशान्ति, अभाव, हड़ताल, रोग, शोक आदि हर तरहसे प्रजा पीड़ित है । इसे कलियुगका प्रभाव कहिये अथवा हमारे बुजुर्ग लीडरोंकी करतूत समझिये ।

मैं तो पण्डित नेहरूको धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मठ-मन्दिरोंके अधिकारियोंको चेतावनी दी है । परन्तु साथ ही-साथ राजनैतिक क्षेत्रमें भी उसके अधिकारियोंको अधिकाधिकरूपमें चेतावनी देनेकी आवश्यकता थी । केवल चेतावनीसे ही काम नहीं चलेगा, आवश्यकता तो इस बातकी है कि राजनैतिक धार्मिक—दोनों ही क्षेत्रोंमें पर्याप्त सुधार किया जाय । इसके लिये राजनैतिक नेताओंका सहयोग पूर्णतया अपेक्षित है । इस विषयमें मेरा सुझाव यह है कि केन्द्रीय मन्त्रीमण्डलमें जैसे विभिन्न विभाग और उसके पृथक् पृथक् मन्त्रालय हैं, उसी प्रकार उसमें एक और भी विभाग खोला जाय और उस विभागका नाम रखा जाय—'भगवद्गीता-विभाग' । इस विभागके लिये पृथकरूपमें योग्य मन्त्री हो । राष्ट्रके पारमार्थिक प्रगतिके लिये ऐसा होना अत्यन्त आवश्यक है । यदि ऐसा न हुआ तो शासन अवश्य ही भ्रष्टाचारी होगा और भ्रष्टाचारी धर्महीन शासन या राष्ट्रका पतन अवश्यभावी है ।

यदि कहिये, गीता मिनिस्ट्री कायम होनेसे सरकारकी धर्म-निरपेक्षताकी नीतिको आघात पहुँचेगा, तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि 'गीता' केवल हिन्दूओंका ही ग्रन्थ नहीं है, यह तो मानव मात्रका और उससे भी अधिक विश्वके प्राणीमात्रकी पारमार्थिक-प्रगतिके सम्बन्धमें सर्वांगपूर्ण, सर्वश्रेष्ठ एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है ।

इन सब विचारोंको खूब सोच-समझ कर दुर्नीति परायण राजनैतिक-क्षेत्र तथा पारमार्थिक क्षेत्र—दोनोंके सुधारके लिये मैंने कुछ दिन पहले पण्डित जवाहरलाल नेहरूको सुझावके रूपमें अँग्रेजीमें एक पत्र दिया था । पाठकोंकी सुविधाके लिये उक्त पत्रका अनुवाद नीचे दे रहा हूँ—

"माननीय श्रीमान पण्डितजी !

कृपया हमारा प्रीतिपूर्ण नमस्कार ग्रहण करेंगे । मैं आपको कुछ निवेदन करना चाहता हूँ । वह यह कि पिछले १८ अगस्त १९५८ ई० को आपने गुरुकुल विद्यापीठ, हरद्वारमें भारतीय संस्कृतिके सम्बन्धमें जो भाषण दिया है, उससे मुझे भारतीय संस्कृतिके सम्बन्धमें आपके पास कुछ लिखनेके लिये प्रोत्साहन मिला है । भारतीय संस्कृतिका मूलाधार है आध्यात्मिकता, जो बाह्य भौतिकवादको दबाती है तथा उसको नियमित कर धीरे-धीरे आध्यात्मिक कल्याणकी दिशामें अग्रसर कराती है । आप पाश्चात्य भौतिकवादको भारतीय आध्यात्मिकताके साथ मिलाना चाहते हैं । अब आध्यात्मिकताको लक्ष्य बना कर भौतिकवादको कैसे आगे बढ़ाया जा सकता है—इस विषयमें मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ ।

यदि हम आध्यात्मिकताका लक्ष्य भूल जाते हैं, तो भौतिकवादका सुख स्वप्नकी भाँति केवल अवास्तव ही रह जायगा, यह प्रकृतिका नियम है। सर्वोन्नत मस्तिष्कवाले सर्वशक्तिमान भगवानके द्वारा प्राकृतिक नियम कुछ ऐसे ही बने हैं कि बड़े-से-बड़े दिमाग-वाले मनुष्य भी उन प्राकृतिक नियमों पर हाथ नहीं डाल सकते। ये नियम-समूह इतने गम्भीर और रहस्यपूर्ण हैं कि बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक भी उन्हें समझनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं। यदि भौतिक-वादी उसे थोड़ा-बहुत समझ भी लें, तो वह उसका एक बहुत ही छोटा नगण्य अंश ही होगा, जिससे कुछ काम नहीं बनता। पाश्चात्य देशोंका इतिहास इस बातका साक्षी है कि वहाँके प्राचीन ग्रीक और रोमनोंसे आरम्भकर आधुनिक परमाणु युद्ध (Atomic war) तक ३०० वर्षका इतिहास परस्पर युद्धोंसे ही भरा हुआ है। यदि हम उक्त समयको एक युद्ध-शृङ्खलाके रूपमें मान लें तो अत्युक्ति नहीं होगी। हमें तो यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि जबतक भारतीय आध्यात्मिकताका संदेश उन पाश्चात्य देशोंमें विधिवत् नहीं पहुँचाया जाता, तब तक वहाँ पर लड़ाईका सिलसिला बन्द नहीं हो सकता। यह काम वहाँ हमारी आधुनिक अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित फौजोंको भेजनेसे नहीं, बल्कि भारतीय आध्यात्मिकताकी संदेशवाहक-संतोंकी टोलियोंको वहाँ भेज कर ही पूरा किया जा सकता है।

इसलिये भारतके लिये यह उचित होगा कि भारतीय जनता भौतिकवादी पाश्चात्य देशका अनु-करण न करके अपनी पारमार्थिक सम्पत्तिका ही विकाश करे एवं परोपकारी दृष्टिसे वह उस सम्पत्तिको सम्पूर्ण विश्वमें वितरण कर वास्तविक सुख और शान्तिकी स्थापना करे। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका यह महावाक्य है कि भारतवर्षमें जिनका जन्म हुआ है, वे अपना जन्म सफल करके अर्थात् दिव्य ज्ञान (भगवत् ज्ञान) लाभ करके उस ज्ञानको जगत्में वितरण कर परोपकार करें—

भारतभूमिते हैल मनुष्य जन्म यार।
जन्म सार्थक करि कर पर-उपकार॥

जीवहिंसा करनेवाले, अवैध स्त्रीसंग करनेवाले, शराब-चाय-सिगरेट-मद्य-मांसका सेवन करनेवाले तथा दूसरोंकी जीवन समस्याके साथ खिलवाड़ करनेवाले पाश्चात्य देशोंका अनुकरण नहीं करके यदि भारत अपने ही देशके ऋषि-मुनियोंका अनुसरण करता—उनके अटूट ज्ञान भण्डारको सम्पूर्ण विश्वमें वितरण करता तो आज पाश्चात्य देशोंमें आणविक बम और परस्पर ईर्ष्याद्वेषकी भीतर ही भीतर सुलगने तथा जब कभी भी अपनी भयङ्कर लपेटोंमें सारे विश्वको क्षण भरमें ध्वंस कर देनेवाली प्रचण्ड दावाग्नि प्रगति पथ पर नहीं होती; साथ ही भारतका गौरव एवं महत्व ही बढ़ता।

आपने स्वीकार कर लिया है कि भारतीय संस्कृति बड़ी गंभीर और उच्च स्तरीय है। परन्तु फिर भी आप यह चाहते हैं कि भारतमें भी पाश्चात्य देशों जैसी भौतिक समृद्धि बढ़े। किन्तु आपको यह मालूम होना चाहिए कि भौतिक समृद्धि किस तरहसे होवे? भौतिक समृद्धिको आगे बढ़ानेके लिये जिस वैज्ञानिक प्रसारकी आवश्यकता है, उसमें आध्यात्मिकता ही आधार है। यह आध्यात्मिकता क्या है? उच्चकोटि-का वैज्ञानिक अनुभव ही आध्यात्मिकता है। आध्या-आध्यात्मिकता कोई बालकका खेल नहीं है। इस आध्यात्मिकताके आधार पर ही भौतिक समृद्धिका विकाश हो सकता है। आध्यात्म-ज्ञानका विकाश हुए बिना भौतिक सुख-समृद्धि बिलकुल असंभव है। आज आध्यात्मशून्य वैज्ञानिक पद्धति द्वारा भौतिक सुख-समृद्धि लानेकी जो अथक चेष्टा हो रही है, उससे सारा विश्व ध्वंसकी अन्तिम छोर तक पहुँच गया है—यह कौन अनुभव नहीं कर रहा है? यह तो आप भी जानते हैं कि महात्मा गाँधीजीका स्वराज आन्दोलन भौतिकवादकी अपेक्षा आध्यात्मिकताके ऊपर ही आधारित रहकर सफल हुआ है। आपका यह ख्याल गलत है कि अश्वरहित यान, तार या

बेतार द्वारा संवाद भेजना और रेडियो—यह सब कुछ भौतिक समृद्धि है । यह तो मायाका वैभव मात्र है, जिससे मनुष्य क्रमशः पशुत्वकी ओर ही अग्रसर होता है। भौतिक उन्नति इससे सर्वथा पृथक् कुछ दूसरी ही चीज है । भौतिक उन्नतिका तात्पर्य यह है कि मनुष्य अच्छी तरह खा-पी सके, आध्यात्मिक उन्नतिके सहायक इस शरीरको इस प्रकार रखा जाय कि वह बलिष्ठ रहे, निरोग रहे तथा जीवन-निर्वाहकी वस्तुएँ सुगमतासे प्राप्त हो सकें, जिससे आत्म ज्ञानका विकाश हो सके । आत्मज्ञानके अभावमें मनुष्य मनुष्य न रह कर पशु बन जाता है । क्या आप ऐसा समझ रहे हैं कि आपकी पंचवार्षिक आदि विभिन्न प्रकारकी योजनाएँ वैसी भौतिक समृद्धि ला सकती हैं अथवा आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता वैसी आदर्श-समृद्धि ला सकेगी ? मेरी समझसे तो पाश्चात्य वैज्ञानिक सभ्यताकी सहायतासे आपकी विभिन्न योजनाओंने मानव जीवनकी उन आवश्यकताओंको यदि पूरा भी कर दिया (ऐसा असम्भव है फिर भी ऐसा मान लिया जाय) तो भी अशान्त मानव अपना यह प्रयत्न तब तक निरन्तर जारी रखेगा, जब तक उसे आध्यात्मिक संतोषकी प्राप्ति न हो जाये । शान्तिका यही गूढ़ रहस्य है ।

रूस और अमेरिका दोनों ही भौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे बहुत आगे बढ़े हुए हैं, फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि वे आध्यात्मिक दृष्टिकी बात तो दूर रहे, साधारण भौतिक दृष्टिसे भी सुखी और शान्तिपूर्ण हैं । इसका कारण यह है कि वे दोनों ही आध्यात्मिक अनुभूतिके पीछे अज्ञकी भाँति उसी प्रकारसे पड़े हुए हैं, जिस प्रकार एक छोटासा अबोध बच्चा—जो अपने विचारोंको वाणी द्वारा स्पष्टरूप से व्यक्त करनेमें असमर्थ होता है—माँ के लिये रोता-चिल्लाता है । आप भारतीय शान्ति और संस्कृतिके सच्चे दूतके रूपमें विश्वके लोगोंकी आध्यात्मिक आवश्यकयताओंकी पूर्तिकर उनकी सहायता कर सकते हैं। आपने विश्व-शान्तिके लिये जो साहसिक और सराहनीय प्रयत्न किये है और कर रहे हैं, उसे विश्वभरके लोगोंने हृदयमें स्वीकार किया है—आपको शान्तिका दूत माना है । अतएव यही उचित समय है कि आप अब अपने मित्रोंकी सहायता करें और साथ ही विश्वशान्तिके लिये विज्ञान की दौड़ में भारतीय आध्यात्मिक उत्कर्षको गौरवान्वित भी करें । कृपया ठंडे दिमागसे इस विषयपर विचार करेंगे ।

ज्ञानका अभाव ही यथार्थ निर्धनता है । प्रख्यात प्रधान मन्त्री चाणक्य झोपड़ीमें रहा करते थे । परन्तु सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्यके समय वे भारतके निरंकुश शासक थे । आपके राजनैतिक गुरु महात्मा गाँधीजी ने भी स्वेच्छापूर्वक भारतीय 'सदा जीवन' के सिद्धान्तको अपनाया था, फिर भी वे भारतके भाग्य-विधाता थे । परन्तु एक क्षुद्र चर्खाके साथ इस प्रकार सादा जीवन व्यतीत करनेके कारण क्या ऐसा माना जायगा कि वे वास्तविक गरीबीके कारण ही ऐसा जीवन व्यतीत करते थे ? कदापि नहीं । वे सदैव आध्यात्मिक ज्ञान पर गर्व करते थे । अतएव आध्यात्मिक उन्नति ही मानवको वास्तिविक धनी बनाती है, न कि रेडियोका सेट और मोटर कार वगैरह । इसलिये कृपया भारतीय संस्कृतिकी स्थिति समझने का प्रयत्न करें और इसे ही अपने पाश्चात्य भाइयोंको प्रदान करनेकी चेष्टा करें । यह पाश्चात्य भौतिकता एवं भारतीय आध्यात्मिकाका विनिमय ही इस शान्तिमय संसारमें सुखी जीवन भर देगा ।"

यह पत्र पहले तो इस सचिवालयसे स्वीकृत भी नहीं हुआ । आखीरमें बहुतसे रिमाइन्डरोंके पश्चात् इस प्रकार स्वीकृत हुआ—

प्रिय महोदय !

आपका दिनांक ३० अगस्त १९५८ ई० का पत्र यथासमय यहाँ प्राप्त हुआ है । भवदीय

डी. पी. चोपरा

—प्राइवेट सेक्रेटरी, प्रधान-मंत्रालय

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त स्वामी महाराज

भक्तके भगवान्

श्रीभगवान भक्तिग्राह्य एवं भक्तवत्सल हैं। वे न तो कर्मग्राह्य या ज्ञानग्राह्य हैं और न कर्मीवत्सल हैं या ज्ञानीवत्सल। जिस प्रकार कर्मकाण्डमें देवता-आराधना और ज्ञानकाण्डमें ब्रह्मोपासना क्लेशसाध्य है, भक्तिमार्गमें भगवदाराधना उस प्रकार क्लेशसाध्य नहीं, बल्कि सहज साध्य है। कर्मकाण्डमें वेद-विधि से कर्म सम्पूर्ण होने पर फलकी प्राप्ति होती है, परन्तु उस विधिमें वैगुण्य दोष होने पर फलकी प्राप्ति तो दूर रहे, यज्ञकारी यजमानका अहित भी होता है। भक्तियोगमें इस प्रकार वैगुण्य दोषकी कोई संभावना नहीं होती। इसमें थोड़ी सी भक्ति होने से ही महान् फल मिलता है। करुणावरुणालय भगवानने अपने भक्तोंकी सांत्वनाके लिए स्वयं कहा है—

अपवप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत्।
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते॥
(श्रीमद्भा० १०।८१।३)

जब द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्यारे सखा सुदामा विप्रसे विनोद करते हुए मुसकराकर कहा—"सखे! आप अपने घरसे मेरे लिये क्या उपहार लाये हैं?" तब सुदामा जी संकोचसे अपना मुँह नीचे कर सोचने लगे—'हाय! मैं कितना अधम हूँ कि जगन्नाथके लिये कठोर चावलके कण लाया हूँ। मेरे जीवनको धिक्कार है; यह तुच्छ चीज भगवान्के कोमल कर-कमलोंमें कैसे दूँ। हाय! हाय! मैं क्या करूँ।" भक्तवत्सल श्रीकृष्ण प्यारे मित्रके हृदयकी बात समझ गये। उन्होंने मधुर मुस्कानके साथ कहा—'प्यारे सखा! आप सोच क्या रहे हैं? मेरे प्रेमी भक्त जब प्रेम से थोड़ी-सी वस्तु भी मुझे अर्पण करते हैं तो वह मेरे लिये बहुत हो जाती है। परन्तु मेरे अभक्त यदि बहुत सी सामग्री भी मुझे भेंट करते हैं तो उससे मैं कदापि सन्तुष्ट नहीं होता। मेरे भक्त लोग मुझे भक्तिसे पत्र पुष्प तथा जल—जो कुछ भी देते हैं, मैं उसे बड़े प्रेमसे ग्रहण करता हूँ। अभक्तों द्वारा दिया गया बहुत कुछ भी मैं ग्रहण नहीं करता। श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(श्रीमद्भा० १०।८१।४ गीता ९।२६)

श्रीभगवान कहते हैं—विशुद्ध अन्तःकरणवाले भक्तों द्वारा भक्तिपूर्वक दिया हुआ द्रव्य ही मैं ग्रहण करता हूँ। "तेन मद्भक्तभिन्नो जनस्तात्कालिक्या भक्त्या यत् प्रयच्छति तत् तेनोपहृतमपि पत्रपुष्पादिकं नेवाश्नामीति द्योतितम्।" मेरे शुद्ध भक्तोंको छोड़ कर कर्ममिश्रा या ज्ञानमिश्रा तात्कालिक भक्तों द्वारा—दूसरे देवताओंके उपासकों द्वारा दिये गये पत्र पुष्प आदि द्रव्योंको ग्रहण नहीं करता। भक्तोंकी इच्छाके अतिरिक्त दूसरों द्वारा श्रद्धापूर्वक दिया हुआ द्रव्य भी ग्रहण नहीं करता।

दांभिकेर रत्नपात्र दिव्य जलासने।
आछुक पिवार कार्य, ना देखे नयने॥
ये से द्रव्य सेवकेर सर्वभावे खाय।
नैवेद्यादि विधिरओ अपेक्षा नाहि चाय॥
(चैतन्य भागवत)

अर्थात् भगवान् दांभिकोंके दिये हुए रत्नके पात्रों में भरे हुए जल अथवा रत्न निर्मित सिंहासन आदि कुछ भी ग्रहण नहीं करते। ग्रहण करना तो दूर रहे वे उन द्रव्योंकी ओर आँखें उठा कर देखते तक नहीं। परन्तु अपने भक्तों द्वारा दिये गये जैसे-तैसे द्रव्योंको भी ग्रहण करते हैं, वे इसमें किसी विधि आदि की परवाह नहीं करते। अतएव भक्ति द्वारा ही भगवान ग्राह्य हैं। भक्तिसे ही उनके दर्शन मिलते हैं। परन्तु वह भक्ति बड़ी दुर्लभ है।

जिस प्रकार सरोवरके अतल तलमें स्थित सुशीतल पंकमें कमलका जन्म होता है, उसी प्रकार काम क्रोध, लोभ, मोहादि पाप, दंभ, हिंसा और मात्सर्य आदि मलरहित विशुद्ध अन्तःकरणरूपी स्वच्छ सरोवरमें दैन्य विनय आदि सद्गुणरूपी पंकमें भक्तिरूपी कमलका जन्म होता है। इसीलिये भक्तलोगोंका स्वभाव तृणादपि सुनीच होता है। वे सम्पूर्ण सद्गुणोंसे युक्त और परम पवित्र होते हुए भी अपने प्रभु श्रीकृष्णके चरणोंमें इस प्रकार दीनताके साथ प्रार्थना करते हैं—

मोसौ पतित न और हरे।
जानत हौ प्रभु अन्तरजामी, जे मैं कर्म करे॥
ऐसौ अंध, अधम, अविवेकी, लाटनि करत खरे।
विषई भजे, विरक्त न सेए, मन धन-धाम धरे॥
ज्यौं माखी, मृगमद-मंडित-तन परिहरि, पूय परै।
त्यौं मन मूढ़ विषय-गुंजा गहि, चिंतामनि विसरै॥
ऐसे और पतित अवलंबित, ते छिन माहिं तरे।
सूर पतित, तुम पतित-उधारन, बिरद कि लाज धरे॥

समस्त प्रकारकी जड़ीय कामनाओं और मत्सरता से सर्वथा रहित विशुद्ध हृदयमें महत् (भक्तजन) की अहैतुकी कृपासे वह अकिंचना भक्ति आविर्भूत होती है। कर्म-ज्ञानमें अहंकार और मात्सर्य भाव रहते हैं। इसलिये भगवान कर्म और ज्ञान-ग्राह्य नहीं होते। वे तो एकमात्र निर्मत्सर संतोंके ही वेद्य हैं। क्योंकि भक्त भगवानके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा भगवान भी भक्तोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते।

'नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।'
(श्रीमद्भा० ९।४।६४)

महर्षि दुर्वासाके प्रति भगवान कह रहे हैं—द्विजवर! अपने भक्तोंका एक मात्र आश्रय मैं ही हूँ। इसलिये अपने साधु स्वभाव भक्तोंको छोड़कर मैं न तो अपने आपको चाहता हूँ न अपनी अर्द्धाङ्गिनी विनाश रहित लक्ष्मीको ही। मैं तो भक्तोंके वश हूँ। सती स्त्रियाँ जैसे सत्पतिको वशमें कर लेती हैं, उसी प्रकार मेरी ऐकान्तिकी भक्तिमें भक्तजन मुझे अपने वशमें कर लेते हैं, क्योंकि वे मेरी भक्तिके अतिरिक्त सालोक्य आदि मुक्तिकी अभिलाषा तक नहीं करते। जब वे कुछ भी नहीं माँगते हैं, तब मैं अपना हृदय उनको अर्पण कर देता हूँ। भक्तजन परमानन्दपूर्वक उसे अपने हृदय मंदिरमें सावधानीसे रख कर रक्षा करते हैं।

"गोप्यादद्देऽयि कृतागसि"
(श्रीमद्भा० १।८।३१)

भक्तोंने भक्तिके बलसे अजित भगवानको भी जय कर लिया है। कुन्तीदेवीने कहा था—कृष्ण! आपके भक्तवात्सल्य आदि गुणोंका स्मरण होनेसे मैं परम विस्मित हो गयी हूँ। अहा! एक दिन आपने व्रजमें दूधकी मटकी फोड़ कर यशोदा मैयाको खिझा दिया था और उन्होंने आपको बाँधनेके लिये जिस समय हाथोंमें रस्सी ली थी, उस समय आप माताजी के डरसे बहुत ही व्याकुल हो गये थे—आपकी आँखोंमें आँसू छलक आये थे, काजल कपोलों पर बह चला था, नेत्र चंचल हो रहे थे भयकी भावनासे अपने मुखको नीचेकी ओर झुका दिये थे, और बारबार अपने कोमल कर-पल्लवोंसे नयन-युगलका मार्जन कर रहे थे। हे श्याम सुन्दर! आपकी उस दशाकी—लीला-छविका स्मरण करके मैं अब भी विमुग्ध हो जाती हूँ। आप साक्षात् परब्रह्म हैं। आप भक्तवत्सल हैं और भक्तको प्रेम देनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। आपके प्यारे भक्त पर मैं बलिहारी हूँ।

भगवान्के अनन्त गुणोंमें भक्तवत्सल गुण ही सर्वोत्तम गुण है और उस गुणका स्वरूप परम दुर्गम है। भगवानके इस सर्वोत्तम गुणकी पूर्ण अभिव्यक्ति व्रजमें है। अगाध बोध सम्पन्न श्रीब्रह्माजी इस व्रजका भाव देख कर विस्मित हो बोले—अहो! मैं कितना अज्ञानी हूँ। आप अनन्त हैं आपकी परीक्षा करनेके लिये मैंने कितना महान् अपराध किया, फिर भी आपने मुझे त्यागा नहीं। आप अदोषदर्शी

हैं। हे विभो! मैंने आपके सर्वोत्तम भक्तवात्सल्य गुणके सम्बन्धमें जो संदेह किया था, वह आपकी कृपालेश द्वारा अब दूर हो गया है। प्रभो! मैं बड़ा ही नीच हूँ। इसीलिये प्रार्थना करनेके योग्य भी नहीं हूँ। अभी व्रजधाममें आपका जो प्रकाश है, वह प्रकाश भक्तवात्सल्यका चरम प्रकाश है और वह शुद्ध वात्सल्य-भाव बड़ा ही दुर्लभ है, वैसे दुर्लभ प्रेमके पात्र व्रजके गोप-गोपी और गौवोंआदिका जय गान कर रहा हूँ।

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः
स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना,
यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः॥
(श्रीमद्भा० १।१०४।३१)

अहो! धन्य हैं व्रजकी गायें और धन्य हैं व्रजकी ग्वालिनियाँ! मैं प्रभुके भक्तवात्सल्य गुणकी बात किसको बताऊँ? स्वयं पूर्ण और सच्चिदानन्द-स्वरूप होकर भी उन्होंने व्रजकी गायों और गोपियोंका स्तन पान किया है। केवल पान ही नहीं, बड़े उमंगसे पान किया है। कैसे? बार-बार पान करते हुए भी और भी पान करनेकी इच्छा उनमें बढ़ती रहती है। अकेली यशोदा मैयाका स्तन पान करनेमें कुछ बाधा भी होती है, वह बाधा असहनीय होनेके कारण व्रजमें गायों और गोपियोंको आत्मज रूपसे प्रकट करके बाधा-रहित—निरन्तर उनका स्तन पान किया है। हे प्रभो आपकी उस भक्त वत्सलताके गुण पर मैं बलिहारी जाती हूँ। जो अभी तक हम लोग परम पवित्र भावसे यज्ञ अनुष्ठान करके भी आपको पूर्णतः तृप्त न कर सके थे, वही आप व्रजकी गोप गोपियोंके विशुद्ध प्रेमसे उनके वशीभूत हो गये हैं।

जय हो भक्तवत्सल वृजबिहारी नन्दलालकी जय हो!

—श्रीहरिकृपा दास ब्रह्मचारी 'भक्तिशास्त्री'

प्रभु तुम सन्मुख कैसे आऊँ?

प्रभु तुम सन्मुख कैसे आऊँ।
मैं निलज, लाज नहीं जानी, पतितन हाथ बिकाऊँ॥
मैं कुटिल, नीच अति कामी, नित विषयन संग धाऊँ।
माया, ममता, मग डरझानी, नेकहुँ राह न पाऊँ॥
पतित उधारन नाम तिहारो, कैसे बिरद मैं गाऊँ।
'सुशील श्याम' तुम्हारे बिरहा में, निशिदिन नीर बहाऊँ॥

—सुशीलचन्द्र त्रिपाठी एम. ए., साहित्यरत्न

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

साधु-संगमें
सम्पूर्ण भारतके तीर्थोंके दर्शनका
अपूर्व-सुयोग

[एक साथ सात मोक्षदायिका पुरियों, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध देव-मंदिरो एवं तीर्थ-स्थानोंके दर्शन, तीनों धामोंकी परिक्रमा और तीर्थ-स्नान आदिका विराट आयोजन]

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी-द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥
(स्कन्द पुराण)

गौर मेरे, जहाँ-जहाँ, भ्रमण किये रङ्गमें ।
मैं भी वहाँ भ्रमण करूँ, प्रणयि भक्त सङ्गमें ॥

अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, (शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची), अवन्तिका (उज्जयिनी) और द्वारकापुरी (बेट द्वारका के साथ)—इन सात मोक्षदायिका पुरियोंका व्यासदेवने स्कन्द पुराणमें वर्णन किया है । इसीलिये मोक्षकी इच्छा रखनेवाले हिन्दू बड़े परिश्रमसे अनेक अर्थ खर्च कर इन सात तीर्थोंमें जाते हैं तथा वहाँ परिक्रमा आदि किया करते हैं । विशेष करके साधुसंगमें तीर्थ-भ्रमणका सौभाग्य अधिक पुण्यात्माओंको ही प्राप्त होता है ।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति इस वर्ष सर्व-साधारणको यह अपूर्व सुयोग प्रदान करनेके लिये आगामी ३० भाद्र, १६ सितम्बर १९६१ ई० शनिवारके दिन हावड़ा (कलकत्ता) से रिजर्व-टूरिष्ट-कार गाड़ी द्वारा सारे भारतके प्रधान-प्रधान तीर्थोंका दर्शन करनेके लिये यात्रा करेगी । यात्री पुरी, रामेश्वर और द्वारका इन तीनों धामों, उपरोक्त सात मोक्षदायिका पुरियों एवं समस्त भारतके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ५० तीर्थस्थानोंका दर्शन करेंगे । इन तीर्थस्थानोंमेंसे अधिकांश स्थान श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंके स्पर्शसे तीर्थीभूत हुए हैं; इसलिये सबके लिये विशेष आदरणीय हैं । अतः कल्याणकामी व्यक्ति इस अपूर्व सुयोगको ग्रहण करनेसे कदापि नहीं चूकेंगे ।

दर्शनीय स्थानोंकी तालिका---

(१) पुरी (२) सिंहाचलम (जियड़ नृसिंह) (३) कबुर (राय रामानन्द और श्रीमन्महाप्रभुका मिलन स्थान) (४) मंगल गिरि (पाना नृसिंह) (५) मद्रास (६) चिलीपुट (पक्षीतीर्थ) (७) चिदाम्बरम् (नटराज) (८) शियाली, (९) मायाभरम, (१०) कुम्भकोणम् (११) पापनाशम् (१२) तांजौर, (१३) रामेश्वर (१४) धनुष्काटि, (१५) मदुरा (१६) कन्याकुमारी, (१७) श्रीरंगम् (१८) विष्णुकांची, (१९) शिवकांची (२०) तिरुपति (२१) पंढरपुर, (२२) नासिक, (२३) बम्बई, (२४) द्वारका, (२५) वेट द्वारका (२६) डाकौरजी (२७) अवन्तिका (२८) नाथद्वार, (२९) अजमेर (३०) पुष्कर (३१) सावित्री (३२) जयपुर (३३) गलता पहाड़ (३३) मथुरा (३५) वृन्दावन (३६) गोकुल (३७) राधाकुण्ड (३८) गोवर्द्धन (३९) नन्दगाँव (४०) बरसाना (४१) दिल्ली (हस्तिनापुर) (४२) कुरुक्षेत्र (४३) भद्रकाली (४४) हरिद्वार (४५) नैमिषारण्य (४६) अयोध्या (४७) प्रयाग (४६) काशी (४९) गया (५०) बैद्यनाथ धाम ।

इस तीर्थ-यात्राकी विशेषता यह है कि यात्री गाड़ीके भीतर ही प्रतिदिन श्रीविग्रहकी सेवा-पूजा, मङ्गलारात्रिक, मध्याह्नकालकी भोग-आरति और संध्यारतिका दर्शन कर सकेंगे । साथ ही वे प्रति दिन गाड़ी के भीतर ही हरि-संकीर्तन, श्रीमद्भागवत आदि शास्त्र व्याख्या, सब समय सत्संगमें हरिकथा और तीर्थ-माहात्म्य आदि श्रवण तथा श्रीविग्रहका बाल्यभोग और दोनों समय महाप्रसाद सेवा करनेका अपूर्व सुयोग पा सकेंगे ।

जाने-आनेका रेल-किराया, रिजर्व गाड़ीके ठहरने आदिका किराया, कुली, मोटर-बास और निवास स्थान आदिका किराया, बाल्यभोग और दोनों समय प्रसाद-सेवा आदि खर्चोंके लिये प्रत्येक यात्रीको कुल ४५०) भिक्षाके रूपमें देना होगा । जिसमें २२५) १७ भाद्र, ३ सितम्बर १९६१ तारीखके मध्य निम्नलिखित पते पर जमा कर देना होगा ।

इस परिक्रमामें लगभग दो माहका समय लगेगा ।

अधिक कुछ जाननेके लिये और अपना-अपना नाम यात्री-सूचिमें लिखवानेके लिये अथवा अपना रुपया जमा करनेके लिये परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराजके निकट श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, पो० चुँचुड़ा (हुगली) के पते पर पत्र-व्यवहार करें या जमा करें । इति ।

निवेदक—

सभ्यवृन्द,

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

विशेष द्रष्टव्य—आवश्यक कारणसे समय और स्थान आदिका परिवर्तन या परिवर्द्धन किया जा सकेगा ।

श्रीगौड़ीय-व्रतोपवास

आषाढ़

२४	त्रिविक्रम,	८	आषाढ़,	२३	जून	शुक्रवार—श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुका तिरोभाव । गंगामाता गोस्वामिनीका तिरोभाव । श्रीगंगादेवीका आविर्भाव (दशहरा) (गंगापूजा) ।
२५	,,	९	,,	२४	,,	शनिवार—पण्डवा निर्जला एकादशीका उपवास ।
२६	,,	१०	,,	२५	,,	रविवार—प्रातः ५-४९ के पश्चात् ९-२४ के पहले एकादशीका पारण ।
२७	,,	११	,,	२६	,,	सोमवार—श्रीपाट पानीहाटीमें श्रीरघुनाथदास गोस्वामीका दण्ड-महोत्सव ।
२९	,,	१३	,,	२८	,,	बुधवार—श्रीश्रीजगन्नाथ देवकी स्नान यात्रा ।
१	वामन	१४	,,	२९	जुलाई,	बृहस्पतिवार—श्रीश्यामानन्द प्रभुका अविर्भाव ।
५	,,	१८	,,	३	,,	सोमवार—श्रीवक्रेश्वर पण्डितका तिरोभाव ।
९	,,	२२	,,	७	,,	शुक्रवार—श्रीवास पण्डितका तिरोभाव ।
१०	,,	२३	,,	८	,,	शनिवार—योगिनी एकादशीका उपवास ।
११	,,	२४	,,	९	,,	रविवार—प्रातः ९-२७ के पहले एकादशीका पारण ।
१४	,,	२७	,,	२२	,,	बुधवार—श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी और श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव । श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखा मठोंमें विरहमहोत्सव और चुँचुड़ा श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव और श्रीश्रीजगन्नाथ देवकी रथयात्राके उपलक्ष्यमें आजसे ग्यारह दिवसीय वार्षिक महामहोत्सव आरम्भ ।
१५	,,	२८	,,	१३	,,	बृहस्पतिवार—श्रीगुण्डिचा मार्जन ।
१६	,,	२९	,,	१४	,,	शुक्रवार—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीका तिरोभाव; श्रीश्रीजगन्नाथ देवकी रथयात्रा । चुँचुड़ा श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें रथयात्राका महोत्सव ।

श्रीश्रीलआचार्यदेव द्वारा उपाधि-प्रदान

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके एकनिष्ठ सेवकगण श्रीश्रीहरिचरण ब्रह्मचारी, श्रीबलराम ब्रजवासी, श्रीहरिदास ब्रजवासी और श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारीकी सेवासे प्रसन्न होकर श्रीश्रीलआचार्य देवने उनको क्रमशः 'भक्तिप्रताप,' 'भक्तिमधुकर,' 'सेवाकौस्तुभ' और 'सेवाकोविद' की उपाधियाँ प्रदान की हैं ।

—प्रकाशक